International Journal of Applied Research 2024; 10(12): 76-78

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2024; 10(12): 76-78
www.allresearchjournal.com
Received: 16-09-2024
Accepted: 13-10-2024

विजय कुमार
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
विजय कुमार
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

गरीबी का वैश्विक आयाम

विजय कुमार

सारांश
आज विकासशील देशों में वैश्वीकरण का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व में चर्चा का मुख्य मुद्दा है। वैश्वीकरण में प्रतियोगिता, दक्षता, बेहतर उत्पादकता एवं प्रौद्योगिक तरक्की के जरिये प्रगति की भी अपार सम्भावनाएं हैं, किन्तु, अभी तक वैश्वीकरण का विश्व के विभिन्न क्षेत्रों पर असमान प्रभाव हुआ है और इससे विषमता गहराई है तथा निम्न आय वर्ग एवं विकासशील क्षेत्र हाशिये पर चले गए हैं। समाज के कमजोर वर्गों में चिन्ता उत्पन्न हुई है क्योंकि, इससे राज्य जनहित कार्यों के दायित्वों से पीछे हट रही है तथा श्रमिकों और उद्यमियों की मजदूरी, दाम, कार्यदशा एवं सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के संदर्भ में क्षमता में गिरावट आई है, अंततः आज वैश्वीकरण के कारण लाभान्वित हुए लोगों की तुलना में नुकसान के शिकार लोगों की संख्या अधिक है। आलोचकों के अनुसार वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप अमीर और अधिक अमीर हो रहा है, जबकि, गरीब और अधिक गरीब के रहा है तथा यह आय–वितरण को प्रभावित कर रहा है। समर्थकों के अनुसार वैश्वीकरण सम्पूर्ण विश्व तथा मानव जाति के लिए एक नई आशा की किरण तथा सम्भावनाओं को उपस्थित किया गया है।

कूट शब्द : जनतंत्रीकरण, राष्ट्र–निर्माण एवं मानवीय विकास।

प्रस्तावना
विश्व विकास रिपोर्ट (World Development Report) 2004 के अनुसार 1 + प्रतिदिन से कम के स्तर में विकासशील देशों की गरीबी का स्तर घटा है जो 1981 में 2001 के बीच 40: से घटकर 21: हुआ है, इस अवधि में सफल घरेलू उत्पादन G.D.P.) प्रति व्यक्ति 30: बढ़ा है, इसी अवधि में गरीबी रेखा से नीचे जीने वाली विश्व की जनसंख्या 1.5 बीलियन से घटकर 1 बीलियन हो गयी है। 1980 के दशक तक पूर्वी एशिया अत्यधिक गरीबी वाला क्षेत्र माना जाता था, आज इसी क्षेत्र को दुनिया में सबसे अधिक विकासशील क्षेत्र माना जा रहा है, तथा इस दौरान इसमें गरीबी का स्तर 50: में घटकर 16: हो गया है। अतः यह तथ्य बताते हैं कि वृद्धि पर वैश्वीकरण के प्रभाव में विकासशील देशों में गरीबी घटाने में केटालिटिक भूमिका (Catalyic Role) अदा की है।
किन्तु, दूसरी ओर, ठीक इसके विपरीत तथ्यों को भी प्रस्तुत किया जाता है। गैर दक्ष तथा अकुशल श्रम शक्ति की मुश्किलें बढ़ी है। किसान, मजदूर तथा कामगारों की बड़ी जमात गरीबी की चपेट में आई है; ऐसी दलील भी दी जाती हैं। वैश्वीकरण के दौर में निर्धनता की विश्वव्यापी निरन्तरता और इससे दो अरब मे अधिक स्त्री–पुरुषों के जीवन में उत्पन्न असहनीय कठिनाइयों पर ध्यान केन्द्रित करने की प्रबल आवश्यकता है। यह सत्य है कि गरीबी की उपेक्षा करना न सिर्फ मौजूदा वैश्वीकरण के प्रवर्तकों के लिये खतरनाक है, बल्कि, यह जनतंत्रीकरण, राष्ट्र–निर्माण एवं मानवीय विकास के टिकाऊपन के लिए भी खतरा पैदा कर रहा है। गरीबी अनेकों सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक समस्याओं की जड़ होती है, क्योंकि सभी निर्धन लोग अव्यवस्था समाज प संस्कृतिक सन्दर्भ में हाशिये पर फेंक दिये जाते हैं।
समाज वैज्ञानिक राजव्यवस्था और संस्कृतियों के विसंगतिपूर्ण वैश्वीकरण के प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त करते हैं। सभी के लिए विकास और न्याय के वायदे के बावजूद ह विश्व के गरीब देशों में बेरोजगारी बढ़ाने और प्राकृतिक संसाधनों को न करने के गरीबी और पिछड़े क्षेत्रों को क्षति पहुँचा रहा है। रोजगार विहीन विकास तथा सीमांत कृषकों, कारीगरों और छोटे उद्यमियों के लगातार कमजोर होते जाने के कारण बढ़ती हुई असमानता ये एक निराशा को जन्म दिया है। नव स्वाधीन देशों की कल्याणकारी राज्य व्यवस्था का कमजोर होते जाना बहुत उत्साहजनक नहीं है। इससे विश्व भर के कमजोर तबकों के स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास और सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता की दृष्टि से विपरीत प्रभाव रहा है। व्यापार व वाणिज्य के क्षेत्र में नैतिक मर्यादाओं के उल्लंघन से उत्पादकों, उपभोक्ताओं और पर्यावरण को नुकसान पहुँच रहा है। बड़े व्यावसायों ने अपने निम्न

स्तरीय वस्तुओं–बीजों से लेकर शीतल पेयों तक से दक्षिण एशिया, लातिनी अमेरिका व पूर्वी यूरोप के बाजारों को पाट दिया है इसके साथ ही पेटेंट कानूनों के रूप में बौद्धिक सम्पदा अधिकार के नाम पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा स्थानीय ज्ञान और कौशल पर कब्जा करना एक अन्य बड़ा खतरा है, इस सबकी ओर समाज वैज्ञानिकों एवं नीति निर्माताओं का ध्यान आकर्षित किया जाना आवश्यक है।

हमारे लिए सूक्ष्म और व्यापक दोनों ही स्तरों पर वर्गों, जातियों, व्यवसायों, क्षेत्रों एवं आयु की सीमाओं को लांघते हुए स्वी एवं पुरुषों के दारिद्रीकरण तथा निर्धनता के स्वरूप को समझना आवश्यक है। इसके साथ ही गरीबी, असमानता, असंगत विकास और जनसंख्या विस्फोट की परस्पर सम्बद्धता की पड़ताल करनी भी जरूरी है क्योंकि कमजोर तबकों की उपेक्षा, समग्र विकास एवं स्वस्थ राष्ट्र–निर्माण दोनों के लिये ही समस्या पैदा करता है। हमारी चिन्ता है कि आज विश्व के कई भागों में आर्थिक आपदा का विस्तार हो रहा है। यह आंतरिक दारिद्र एवं विदेशी ऋणों दोनों के सम्मिलित बोझ का परिणाम है। दक्षिण एशिया, अफ्रीका, लातिनि अमेरिका और मध्य एवं पूर्वी यूरोप के देशों की एक विडम्बना यह भी है कि जहाँ इनमें एक ओर गरीबी का अनुपात कुछ कम हो रहा है वहीं दूसरी ओर गरीबों की संख्या बढ़ रही है। उत्तर औपनिवेशिक काल की सरकारों में उच्चपदों में व्याप्त भ्रष्टाचार कैंसर की तरह बढ़ता दिखाई दे रहा है। इसके अतिरिक्त आज वैश्वीकरण के वर्चस्ववादी एवं समरूपताकारी दबावों के कारण देशज अस्मिताओं और संस्कृतियों की जड़ें कमजोर हो रही हैं। भोगवाद की वासना इस सच को और जटिल बना रही है, जबकि इसके कारण लोगों के जरूरतों की पूर्ति के स्तर अथवा जीवन–दशा में कोई सुधार नहीं हो रहा है। वैष्वीकरण आधारित वैश्वीकरण का यह भी एक खतरनाक परिणाम हुआ है कि गरीबी से पीड़ित लोगों की दशा सुधारने के बारे में हमारा प्रशासन एवं बैंकिंग व्यवस्था की भूमिका का प्रभाव घटता जा रहा है। मोटे तौर पर संचार माध्यमों में भी गरीबी की समस्या के प्रति सरोकार लगातार कम होता जा रहा है। नव स्वाधीन समाजों के राजनीतिक नेतृत्व एवं सत्ता व्यवस्था की कार्य– सूची में भी इसकी महत्ता कम हो रही है।

इसके अतिरिक्त निर्धनता सिर्फ गरीबों के लिये ही नहीं अपितु अमीरा के लिए के उचित नहीं होती है। इसका परिणाम नवस्वाधीन राष्ट्रों के साथ ही अति सम्पन्न आठ यूरो–अमेरिकी देशों के लिये भी चिन्ताजनक रहा है। हमारी दृष्टि में गरीबी और वैश्वीकरण का सह अस्तित्व नहीं हो सकता और गरीबी की चुनौती का सामना करने के लिये राज्य निजी क्षेत्र और नागरिक समाज के प्रयासों में संयुक्तता की आवश्यकता है। नयी सहस्त्राब्दि की यह चुनौती है कि वैश्वीकरण की मौजूदा लहर में निहित नकारात्मक प्रवृत्तियों को रोका जाए क्योंकि इससे असंख्य समूहों और समुदायों को नुकसान हो रहा है। वैश्वीकरण के मौजूदा यह दौर के परिणामों से यह स्पष्ट है कि इसके कारण हर देश में विकास की विषमता में वृद्धि हुई है। विश्व को संतुलित विकास के जरिये संतुलित वैश्वीकरण की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव होगा जब वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना करने और इसमें निहित सम्भावना का लाभ लेने के लिये जनसाधारण को सशक्त बनाया जाए। प्रत्येक व्यक्ति के लिये स्वतंत्रता और मर्यादा पर आधारित समग्र समाज के स्वप्न को साकार करने के लिये आवश्यक ढाँचे की रचना कैसे की जा सकती है जिसमें वैश्वीकरण के अशुभ तत्वों का निर्मूलन, जनसाधारण का सशक्तीकरण तथा समन्वित विकास का संबर्धन हो सके।

नागरिक समाज, राजसत्ता और निजी क्षेत्र के प्रयासों के समन्वय के आधार पर गरीबी की चुनौती का सामना करने के लिये निम्नलिखित सात–सूत्री कार्यक्रम है :

1. भूख से मुक्ति हेतु आहार का अधिकार।
2. सभी को शिक्षा का अवसर।
3. शुद्ध पानी एवं स्वास्थ्य सुविधाएँ।
4. आजीविका हेतु रोजगार अधिकार।
5. विकलांगों एवं वृद्धों के लिये सामाजिक सुरक्षा।
6. गरीबों की आमदनी और रोजगार अवसरों में विस्तार।
7. सूचना का अधिकार।

निश्चय ही यह कार्यक्रम लोक एकता और राष्ट्रों के बीच सामूहिक उत्तरदायित्व हेतु विश्वव्यापी साझेदारी के माध्यम से सुनिश्चित किया जा सकता है। इसके लिये

(क) निर्धन वर्गों में जागरण एवं आन्दोलन।

(ख) कमजोर राष्ट्रों की कर्ज–मुक्ति।

(ग) वैश्वीकरण के लाभान्वित समूहों और राष्ट्रों द्वारा शेष समाज तथा विश्व के साथ संसाधनों की साझेदारी भी आवश्यक है। इसके लिए आज दुनिया को विश्व व्यापार संघठन 8 के समूची मानवता का एकमात्र प्रबन्धक बने रहने के बजाए एक विश्व सामाजिक संघठन की ज्यादे आवश्यकता है।

विश्वव्यापी गरीबी के शिकंजे से बाहर निकालने हेतु दुनिया में गरीबी उन्मूलन की प्रतिबद्धता को प्रबल बनाना होगा तथा हाशिये पर जी रहे करोड़ों स्त्री पुरुषों के लिए नागरिक समाज, निजी क्षेत्र और राष्ट्रों की सरकारों में हमदर्दी तथा वास्तविक सरोकार विकसित करना होगा। बढ़त दर्ज की गई है जो लगभग 2.07: रही। उक्त तथ्यों के आधार पर यह भी कहा जा सकता रूप हैं कि रोजगार की भागीदारी कृषि क्षेत्र में घटी है जबकि अन्य क्षेत्रों में बढ़ी है, विशेष से उत्पादन, निर्माण, व्यापार तथा यातायात के क्षेत्रों में उल्लेखनीय रोजगार वृद्धि हुई है।

यह उल्लेखनीय है कि वैश्वीकरण प्रक्रिया और भारतीय अर्थव्यवस्था एवं समाज की संरचना की अपनी कुछ खास ऐतिहासिकता तथा विद्यमान विशेषताएँ हैं। इसे वैश्वीकरण किस प्रकार से प्रभावित कर रहा है, इस बात को, वैश्वीकरण के प्रभाव का मूल्यांकन करते समय अच्छी प्रकार से समझ लेना चाहिये। भारतीय समाज के लिये वैश्वीकरण कौन सी चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है ? भारत में वैश्वीकरण किस प्रकार से गरीबी की समस्या से सम्बन्धित है ? क्या वैश्वीकरण राज्य की स्वायत्तता से समझौता करता है ? राज्य की नयी आर्थिक नीतियों में कहाँ तक स्वदेशी वचनबद्धता अथवा वैश्वीकरण का प्रभाव है ? क्या हमारी सांस्कृतिक पहचान को तथा स्थानीय संस्कृतियों की पहचान को तथा नृजातीय समूहों को वैश्वीकरण चोट पहुँचा रहा है ? आदि कई महत्वपूर्ण प्रश्न प्रासंगिक हैं, किन्तु, इनकी तफसील में न जाकर सीधे वैश्वीकरण और गरीबी के बीच के मुख्य दो प्रश्नों को रेखांकित करना समीचीन है। प्रथम प्रश्न है: वैश्वीकरण की प्रकृति तथा विस्तार और दूसरा प्रश्न है : भारत में गरीबी की माँप। इन दोनों का उत्तर देना एक कठिन कार्य है, क्योंकि भारत में गरीबी और वैश्वीकरण के विस्तार को सही–सही मोचने वाले सूचकों (Indictor) को निर्मित करने में मौलिक तथा पद्धतिशास्त्रीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। गरीबी तथा वैश्वीकरण का अनुमानित आंकलन किया जा सकता है। अतः गरीबी और वैश्वीकरण के विस्तार दोनों का आंकलन अनुमानित अथवा अपूर्ण ही होगा।

सर्वप्रथम गरीबी को लिया जाये। अभी तक के विभिन्न अध्ययन भारत में गरीबी के बारे में मुख्य रूप से दो प्रकार के चित्र प्रस्तुत करते हैं। प्रथम : बृहत्सांख्यिकीय गरीबी का प्रभाव क्षेत्र (Macro Statistical Incidence of Poverty) सूचकों के एक युग्म को प्रयुक्त करते हुये इसे देखना यह अर्थशास्त्रियों, जनांकिकीविदों (Demographer) और सामाजिक कार्यकर्ताओं (Social activists) में लगातार चर्चा का विषय रहा है। इस प्रकार के आंकलन के अनुसार भारत में गरीबी लगातार घट रही है तथापि विभिन्न राज्यवार तथा सामाजिक तबकोंवार गरीबी की दर में विभिन्नता

देखी गयी है। इस प्रकार के अध्ययन मुख्य रूप से एन० एस० एस० (National Sample Survey) द्वारा संकलित किये गये डेटा (Dati) पर आधारित है। इस प्रकार के तबकों में अधिकांश क्षेत्रों में सबसे अधिक महिलाएँ एवं बच्चे असुरक्षित होते हैं। अभी तक के सम्बन्धित अध्ययन बताते हैं कि भारत में 1980 से 2004 के बीच गरीबी रेखा से नीचे जीने वालो का प्रतिशत लगभग 30–31 से घटकर 26–27 प्रतिशत हो गया है। एन०एस०एस० के 50वें और 55वें चक्रों (Round) के बीच रूपान्तरण के आधार पर स्थानीय रूझानों के संदर्भ में यह पाया गया कि 1993–94 और 1999–2000 के बीच गरीबी उल्लेखनीय रूप में तीन प्रतिशत प्वाइंट (Three Percentage Point) घटी थी। वास्तव में, हालांकि, कुछ बड़े स्थानीय तरीके सामने तो आये, जो आगामी आर्थिक सुधार के विशिष्ट सम्पर्कों के तालमेल विकसित कर सकते थे, परन्तु राज्यों और क्षेत्रों के आधार पर गरीबी परिवर्तन के सम्बन्ध में डेटा अब भी अविश्वसनीय है।

गरीबी की प्रकृति को समझने की एक वैकल्पिक पद्धति इस बात पर आधारित होती है कि भारत में इस समस्या का सामना करने वाले गरीबों द्वारा अपनाई गयी रणनीति में परिवर्तन गरीबी के सांख्यिकीय अनुमान से नहीं देखा जा सकता है। सूक्ष्म (Micro) सामाजिक संरचना और उपसंस्कृति के स्तर पर कार्य करने वाली रणनीतियों से सम्बन्धित गरीबी की आन्तरिक गत्यात्मकता को जाने बिना सांख्यिकीय डेटा हमें गरीबी के तथ्यहीन डेटा उपलब्ध कराते हैं। गरीबी पर सामाजिक मानवशास्त्रीय तथा समाजशास्त्रीय अध्ययनों में गरीबों द्वारा अपनाई जाने वाली रणनीतियों पर गहन अनेक अध्ययन हुए हैं। इनमें से अधिकांश का यह निष्कर्ष है कि गरीब द्वारा छेकी गई जगह स्थिर नहीं, बल्कि, गतिशील होती है। हमेशा कुछ गरीब गरीबी रेखा से बाहर निकलते रहते हैं और गरीबी रेखा के बाहर के कुछ लोग इसमें सम्मिलित होते रहते हैं। इस प्रक्रिया में आपस में टकराते रहने वाले कार्य–कारण कारक (Causal fctors) ऊपर–नीचें होते रहते हैं। ऐसा परिवार के स्तर पर अथवा जननीतियों या स्थानीय अवसरों के माध्यम से उन्हें उपलब्ध बाहरी अवसरों को स्वीकारने के विविध तरीकों के कारण होता है। गरीबी की उपसंस्कृति भी इसमें भूमिका अदा करती है जो एक सामाजिक समूह से दूसरे सामाजिक समूह तथा एक परिवार से दूसरे परिवार में भिन्न–भिन्न होती हैं। ''दलितों में गरीबी (Poverty among the Dalit)'' विषय पर प्रोफेसर योगेन्द्र सिंह द्वारा किये गये अध्ययन का निष्कर्ष भी उक्त कथन की पुष्टि करता है। इसमें वे कहते हैं कि गरीबी रेखा से ऊपर का दलित पारिवारिक आय बढ़ने के बावजूद गरीबी से जूझ रहा है और कभी–कभी वह पुनः गरीबी के स्तर से नीचे चला जाता हैय क्योंकि यह अपनी अपेक्षित रूप रेखा के प्रबंधन, खान–पान तथा स्वास्थ्य सुरक्षा की रणनीतियाँ बना पाने में असफल है। अतः वैश्वीकरण के भारतीय संदर्भ मे समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र के पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य द्वारा गरीबी को समझना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. एल्ब्रो, मार्टिनः द ग्लोबल एजः स्टेट एंड सोसाइटी बियॉन्ड मॉडर्निटी, पॉलिटी प्रीस इन एसोसिएशन विद ब्लैक वेल पब्लिशर लिमिटेड, 65, ब्रिज स्ट्रीट, कैम्ब्रिज, यू.के. 1996.
2. एंडरसन, बी.ः कल्पित समुदायः राष्ट्रवाद की उत्पत्ति और प्रसार पर चिंतन, वर्सो, लंदन। 1983
3. अप्पादुरई, अर्जुन : मॉडर्निटी एट लार्ज : कल्चरल डाइमेंशन्स ऑफ ग्लोबलाइजेशन, मिनियापोलिस ऑफ मिनेसोटा प्रेस, 1996.
4. बामयेह, एम.ए. : 'ट्रांसनेशनलिज्म', करेंट सोशियोलॉजी 41 (3) विशेषांक, 1993.
5. बेयर, पी. 'ग्लोबलाइजेशन' इन आर. वुंथनो (एड) इनसाइक्लोपीडिया ऑफ पॉलिटिक्स एंड रिलीजन, रूटलेज, लंदन, खंड 1, 1998.
6. भगवती, जगदीश : इन डिफेंस ऑफ ग्लोबलाइजेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2004.
7. भार्गव, गोपाल : मास मीडिया एंड पब्लिक इश्यूज, ईशा बुक्स, दिल्ली, 2004.
8. भाटिया, ए.के. टूरिज्म डेवलपमेंट, प्रिंसिपल्स एंड प्रैक्टिसेज, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट, नई दिल्ली, 1986.
9. बॉटमरे, टॉम : ए डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थॉटय बेसिल ब्लैकवेल पब्लिशर्स लिमिटेड, ऑक्सफोर्ड, व्41श्रथ, इंग्लैंड, 1983.
10. ब्रेकेनविज, सी (एड)य कंज्यूमिंग मॉडर्निटीः पब्लिक कल्चर इन कंटेम्पररी इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।